अनुसंधान प्रतिवेदन क्र   शासकीय उपयोग हेतु

"बस्तर दशहरा का मोनोग्राफ अध्ययन"

वर्ष : 2014–2015

मार्गदर्शन : डॉ.टी.राधाकृष्णन आई.ए.एस

निर्देशन : एम.एल.पंसारी

अध्ययन एवं प्रतिवेदन : डॉ.रूपेन्द्र कवि

आदिमजाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान,

रायपुर (छ.ग.)

अनुसंधान प्रतिवेदन क्र

शासकीय उपयोग हेतु

''बस्तर दशहरा का मोनोग्राफ अध्ययन''

वर्ष 2014—2015

मार्गदर्शन
डॉ. टी. राधाकृष्णआई.ए.एस.
संचालक
आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
रायपुर (छ.ग.)

निर्देशन
एम.एल.पंसारी
अनुसंधान अधिकारी
आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
क्षेत्रिय इकाई बस्तर जगदलपुर

अध्ययन एवं प्रतिवेदन
डॉ.रूपेन्द्र कवि
अनुसंधान सहायक
आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
क्षेत्रिय इकाई बस्तर जगदलपुर

आदिमजाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान रायपुर,(छ.ग.)

—: विषय सूची :—

क्र	विषय		पृ.क्र
1	बस्तर का दशहरा – प्रस्तावना	:–	01–04
	बस्तर का दशहरा – पूजा विधान	:–	
2	पाट जात्रा पूजा विधान	:–	05–06
3	डेरी गड़ाई पूजा विधान	:–	07–08
4	काछिन गादी	:–	08–11
5	काछन जात्रा पूजा विधान	:–	11–12
6	रैला पूजा विधान	:–	12–13
7	कलश स्थापना पूजा–विधान	:–	14
8	जोगी बिठाई विधान	:–	15–17
9	सिरहासार भवन का नामकरण	:–	17
10	बेल पूजा तथा माँ दन्तेश्वरी को न्यौता	:–	17–18
11	न्यौता	:–	18
12	मावली माता का आगमन	:–	18
13	मावली परघाब पूजा विधान	:–	19–20
14	नवरात्र पूजा एवं रथ परिक्रमा	:–	21
15	रथ परिक्रमा	:–	21–23

16	महा अष्टमी दुर्गा पूजा विधान	:–	23–24
17	निशा जात्रा पूजा विधान	:–	24–25
18	कुवांरी पूजा विधान	:–	26–27
19	जोगी उठाई पूजा –विधान	:–	27
20	भीतर रैनी	:–	28–29
21	बाहर रैनी	:–	29–30
22	मुरिया दरबार	:–	31–32
23	कुटुम्ब जात्रा पूजा विधान	:–	33–34
24	माई दन्तेश्वरी (मावली) की बिदाई पूजा विधान कार्यक्रम	:–	35
	सम्मिलित सहयोग :–	:–	
25	रथ– निर्माण	:–	36–38
26	रथ की सजावट	:–	38
27	फूल व्यवयस्था	:–	39
28	मुण्डा बाजा	:–	40
29	बलि की व्यवस्था	:–	41
30	कार्मिक व दशहरा में भाग लेने वालों के लिए भोजन सुविधा	:–	42–43
31	निष्कर्ष	:–	44

****

बस्तर दशहरा

प्रस्तावनाः–

बस्तर की संस्कृति विलक्षण है। बस्तर के मूल निवासी, जिसमें आदिवासी तथा अन्य जाति समुदाय के लोग समाहित हैं, सदैव परस्पर निर्भरता के साथ आदि काल से रियासत तथा आधुनिक काल तक निवासरत हैं। जातीय बंधनों के बाद भी परस्पर निर्भरता तथा एकता का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप बस्तर में मनाये जाने वाले बस्तर दशहरा महापर्व में दिखाई देता है। यहाँ के हरेक जातियों की संस्कृति को आज भी आदिम युग में देखा जाता है। वहीं दूसरी ओर सभ्यता की विविधता भी देखने को मिल रही है। यहां सांस्कृतिक विशिष्टता परिलक्षीत होता है।

रावण वध की प्राचीन परम्परा से अलग हटकर बस्तर का दशहरा पर्व राजवंशीय संस्कृति एवं लोक संस्कृति का अद्वितीय उदाहरण है। पूर्ण बस्तर क्षेत्र की विभिन्न जातियों की सामूहिक भूमिका में संचालित बस्तर का दशहरा त्यौहार देश–विदेशों में बस्तर की अद्वितीय लोक संस्कृति के इस महान परम्परा को परिचित कराने में प्रमुख भूमिका निभाया है। बस्तर के आम जनजीवन से जुड़े इस पर्व की प्रतिक्षा यहाँ का हर बाशींदा करता हैं।

जिस तरह छत्तीसगढ़ 36 मजबूत किलों से समृद्ध रहा है, ठीक उसी तरह यह सैकड़ों समृद्ध परम्पराओं से भी ओतप्रोत है छत्तीसगढ़ राज्य में जनजातीय क्षेत्र बस्तर अंचल अपने विशिष्ट संस्कृति के कारण विश्व पटल पर परिलक्षित होता है। इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण है, विश्व में सबसे लम्बे समय लगभग 76 दिन तक मनाया जाने वाला 500 (पांच सौ) वर्ष पुराना ऐतिहासिक बस्तर दशहरा। मॉ दन्तेश्वरी को समर्पित यह दशहरा पर्व आज स्थानीय लोगों के अलावा देशी–विदेशी पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

लेकिन प्रमुखतः बस्तर के दशहरा पर्व को पूर्ण उल्लास के साथ केवल 13 दिन ही मनाया जाता है। बस्तर संभाग की विभिन्न जनजातियों की सामूहिक भूमिका में संचालित बस्तर का दशहरा पर्व, विभिन्न देशों में बस्तर का दशहरा पर्व विभिन्न देशों में बस्तर की अद्वितीय लोक एवं सस्कृति के इस महान परम्परा को संस्थापित किया है। मुख्यतः बस्तर के हरेक जाति तथा जनजाति से जुड़े इस पर्व की प्रतिक्षा यहाँ का हर नागरिक को रहता है। साथ ही उड़ीसा राज्य के कुछ क्षेत्र भी बस्तर दशहरा में अपनी देवी–देवताओं को शामिल करने लाते है। जैसे नक्टीसिमुड़ा,कसतोगा। इस प्रकार चाहे प्रशासनिक भौगोलिक स्थिति भले ही बदली लेकिन धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से क्षेत्र नहीं बदला है। बस्तर के प्रत्येक नागरिकों में दशहरा पर्व का इस प्रकार रस भरा हुआ है।

भारत में प्रतिवर्ष विजयदशमी के दिन प्रथानुसार जगह–जगह रावण के प्रतीक को मार लेने के पश्चात् विजयोत्सव मनाया जाता है। पौराणिक संदर्भो के अनुसार इस दिन श्रीराम ने रावण का वध किया था और इसी दिन आदिशक्ति मॉ दुर्गा ने महिषासुर का वध किया था।

रावण–वध की प्रचलित परिपाटी से परे,रथ–चालन की विशिष्ट परम्परा से प्रतिबद्ध था बहु–दिवसीय आयोजन होने के कारण, बस्तरदशहरा अन्य स्थानों के दशहरे से अलग अपनी गुणवत्ता प्रमाणित करता आ रहा है।

भूतपूर्व चक्रकोट राज्य से लेकर बस्तर राज्य तक के काकतीय (चालुक्य) राज परिवार की ईष्ट देवी तथा बस्तरांचल के समस्त लोक–जीवन की अधिष्ठात्री लोक– देवी दंतेश्वरी की प्रति श्रद्धा–भक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति का पर्व है,बस्तर का अद्वितीय दशहरा। उल्लेखनीय है। कि इस पर्व के तहत हरिजन जातियों,पिछड़ी जातियों और विभिन्न जन–जातियों का समावेश सम्मानपूर्वक होता चला आ रहा है

प्राचीन समय में शक्ति उपासना के अन्तर्गत तन्त्र –साधना और बलि प्रथा के लिए मान्यताएं जगह जगह प्रचलित थी। इसलिए यह जाहिर है कि बसत्र दशहरा तांत्रिक कर्म–कांड से पूरी तरह जुड़ा हुआ था और आज भी यह किसी हद तांत्रिका व्यवस्था से जुड़ कर ही चल रहा है।

पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व बस्तर में विजयोत्सव का रथों से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं था। पुराने लोगों के अनुसार उन दिनों नवरात्र ही लोगों की उत्सव धर्मिता का एकमात्र आकर्षण था।

बस्तर का अद्वितीय दशहरा चालुक्य वंशीय राजपरिवार की इष्ट देवी तथा बस्तर अंचल के समस्त लोक जीवन की ईष्ट व राज्य (बस्तर रियासत) की आराध्य देवी दंतेश्वरी के प्रति श्रद्धा–भक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति का पर्व है। बस्तरांचल में धार्मिक दृष्टि से सवत्र शिव और शक्ति का वर्चस्व है। बस्तर में देवी पूजा सर्वोपरि है। यहाँ के लोक जीवन में देवी–देवताओं के शक्ति का प्रभाव है। बस्तर दशहरा पर्व में रावण–वध नहीं किया जाता, विजयादशमी के अवसर पर रावण वध की पंरपरा को न मानते हुए सम्पूर्ण विधि–विधान देवी–देवाओं पर ही आधारित है।

बस्तर दशहरा के वर्तमान स्वरूप का शुभारम्भ (प्रमुख रूप से वारंगल के चालुक्यों ने सन् 1324 ई. से बस्तर पर अपना अधिपत्य स्थापित) किया जो काकतीय राजवंश के नाम से बस्तर पर स्वाधीनता प्राप्ति काल तक राज्य करते रहे। ब्रिटिशकाल में बस्तर एक प्रमुख रियासत थी जिसके अंतर्गत 13 प्रमुख जमींदारियाँ भी थी।)

यहाँ के काकतीय राजा पुरूषोत्तम देव के शासन काल (सन् 1408 से 1439 के मध्य) में हुआ था। राजा पुरूषोत्तम देव की जगन्नाथपुरी की सात्विक तीर्थयात्रा के उपरांत पुरी के राजा ने उन्हे 'रथपति' की उपाधि से अंलकृत किया था। ऐसा माना जाता है कि इस तीर्थयात्रा की वापसी के दौरान राजा पुरूषोत्तम देव रथयात्रा पर्व (गोंचा पर्व) के अतिरिक्त दशहरा पर्व में भी रथों का प्रयोग प्रारम्भ किया जो कि ऐतिहासिक परम्परा का प्रतीक बन गया। अवगत हुआ कि राजा पुरूषोत्तम देव एक बार जगन्नाथपुरी यात्रा के लिए गये हुऐ थे राजा के साथ उनके आदमी भी मौजूद थे। राजा ने मंदिर के कुछ दूर पहले से अपने पेट के बल से मंदिर तक पहुँचे। इसके पूर्व रात में यहाँ के पुजारी को स्वप्न में राजा पुरूषोत्तम देव को भगवान के द्वारा रथपति घोषणा करने की अनुमति मिली थी। तत्पश्चात् ऐसा माना जाता है कि रथपति की घोषणा उस पुजारी के द्वारा ही घोषित किया गया।

उद्देश्यः–

बस्तर दशहरा पर्व के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः–

1. बस्तर दशहरा पर्व के ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने का अध्ययन करना।
2. दशहरा पर्व में उपयोग होने वाले पूजा–विधान का क्रमागत अध्ययन करना।
3. दशहरा पर्व में प्रयोग होने वाले बलि प्रथा का अध्ययन करना।
4. दशहरा पर्व में जनजाति समुदायों द्वारा स्वसहयोग व श्रम प्रदान करने का अध्ययन करना।
5. दशहरा में विभिन्न अनुष्ठानों का प्रथागत उपयोग होने का अध्ययन करना।
6. रथ के लिए लकड़ी बंदोबस्त करने के विषय का अध्ययन करना।
7. रथ निर्माण व साज श्रृंगार के विषय का अध्ययन करना।
8. विभिन्न देशों से आए शैलानियों द्वारा बस्तर संस्कृति के आदान – प्रदान में सहयोग प्रदान करने का अध्ययन करना।
9. बस्तर दशहरा पर्व में बदलाव का अध्ययन करना।
10. प्रमुख देवी–देवताओं को जानने हेतु अध्ययन करना।
11. बस्तर दशहरा मे योगदान देने वाले माँझी,चालकी, नाई,मेम्बर,मेम्बरीन आदि सदस्यों का अध्ययन करना।

महत्वः–

बस्तर दशहरा की जानकारी प्राप्त करने में इसका महत्व निम्न प्रकार है।

1. बस्तर दशहरा से संबंधित ज्ञान के विकास में सहायक।
2. दशहर पर्व के वैज्ञानिक अध्ययन में सहायक ।
3. बस्तर दशहरा पर्व के सामाजिक, सांस्कृतिक,धार्मिक,राजनैतिक व्यवस्था से अवगत होना।
4. दशहरा पर्व से संबंधित प्रमुख देवी–देवताओं के संबंध से अवगत होनो।
5. बस्तर दशहरा में जनजातियों के अनेकता में एकता का दर्शन संबंधी जानकारी प्राप्त करना।

बस्तर का दशहरा – पूजा विधान :–

पाट जात्रा पूजा विधानः–

हम अगर बस्तर दशहरे की बात करते हैं तो हम पता हैं कि यह विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों, संस्कृतियों, व कायदे–कानून आदि का संगम है। बस्तर दशहरा पर्व कहते है कि श्रावण का जो महिना है त्यौहारों की झड़ी लेकर आती हैं ठीक वैसे ही श्रवण महीने में बस्तर आंचल में महापर्व (दशहरा) शुरूआत का महीना भी माना जाता है, जो आज विश्व प्रसिद्ध बस्तर दशहरा के नाम से भी जाना जाता है। विश्वप्रसिद्ध बस्तर दशहरा का विधिवत शुभारंभ श्रवण मास की अमावस्या तिथि से अर्थात हरियाली अमावस्या से प्रारम्भ होता हैं दशहरा पर्व विधि विधान के तहत प्रतिवर्ष रथ यात्रा के लिए रथ निर्माण किया जाता है। हरियाली अमावस्या के दिन नवीन रथ बनाने के लिए 'ठुरलू खोटला' लकड़ी व सरगी लकड़ी का बड़ा–बड़ा टुकड़ा लाया जाता हैं लेकिन विधि– विधान के अनुसार 'ठुरलू–खोटला' लकड़ी के टुकड़े व रथ को बनाने में उपयोग आने वाले सभी औजारों को रखकर मंदिर में स्थापित स्थानीय माईं दन्तेश्वरी देवी के चरण मे /सामने में रखकर पूजा–अर्चना की जाती है। इस विधि विधान को 'पाट–जात्रा' कहा जाता है । ये सभी रस्म को पूर्ण करने के लिए

स्थानीय पुजारियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। पूजा –विधान में बलि प्रथा का उपयोग होना यहां आम बात है। यहो तक की यहा कि शिक्षित वर्ग भी बलि प्रथा पर आस्था रखते हैं। अखिर क्यों न रखें, भला यहॉ की शक्ति पीठ व आराध्य देवी माँ दन्तेश्वरी का आशीर्वाद यहाँ के प्रत्येक जन पर उनके हरेक कदम पर बरसता व बसता है। इस दिन से बलि प्रथा की रस्म शुरू होती है। दशहरा के समापन तक बलि प्रथा जारी रहता है। पाट–जात्रा में नारियल, मछली व बकरे का होना अति आवश्यक होता है फिर माँ दन्तेश्वरी देवी की आराधना की जाती है। साथ ही साथ विभिन्न देवी–देवताओं का आहवान कर प्रार्थन(बिनती) किया जाता है, कि इस वर्ष जो पर्व के लिए लकड़ी लाया गया है, उस लकड़ी के तने से रथ यात्रा के लिए रथ का निर्माण सुचारू रूप (निर्विघ्न) से हो। अर्थात किसी भी प्रकार का कोई कठिनाईयाँ व अशांति का माहौल उत्पन्न न हो। इस बिनती का मूल भाव व पाठ–जात्रा का मूल सरांश यही है। साथ ही ऐसा भी माना जाता है कि लकड़ी के इस आत्म –दान को भुलाया नहीं जा सकता। इसलिये इस प्रथा के माध्यम से बस्तर का जन– जीवन लकड़ी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

डेरी गड़ाई पूजा विधानः–

बस्तर का दशहरा पर्व नियमानुसार व क्रमागत सम्पन्न होता है। पाट–जात्रा के पश्चात् 'डेरी–गड़ाई' रस्म पूरी होती है। इसके पीछे लोगों की मान्यता यह है कि डेरी गड़ाई के रस्म को पूरा करके दशहरा निर्विघ्न सम्पन्न करने की आशा की जाती है। डेरी–गड़ाई को स्तम्भारोपण भी कहा जाता है। यह 'सरगी' (साल) वृक्ष की दो प्रजाति की डेरी, स्तम्भनुमा लकड़ी का लगभग 9–10 फुट का ऊँचा लट्ठा होता है जिसे परम्परानुसार बस्तर के महापर्व दशहरा के प्रारम्भ होने के पूर्व स्थानीय सिरहासार में स्थापित किया जाता है। ये मान्यता के अनुसार कि शुभकार्य करने के पूर्व जैसे विवाह समारोह में मण्डपाच्छादन की जाती हैं। ठीक उसी तरह ही 15 से 20 फीट की दूरियों पर दो गड्ढे खोदे जाते हैं और इन गड्ढो में स्थानीय पुजारियों के द्वारा जंगल से लाए गए स्तम्भों में हल्दी, कुमकुम, चंदन का लेप लगाकर दो सफेद कपड़े बांधकर पूजा–विधान सम्पन्न किया जाता है। इन गड्ढ़ो पर डेरी स्थापित करने के पूर्व जीवित मोंगरी मछली अण्डा और 'फूला–लाई' डालकर डेरी को स्थापित किया जाता है। इस रस्म को भादों शुक्ल पक्ष द्वादश अथवा तेरस के दिन पूर्ण कर ली जाती है। डेरी गड़ाई के साथ ही जंगलो से रथ के लिए लकड़ी लाना व निर्धारित गाँवों से रथ निर्माण हेतु कारीगारों का आना प्रांरभ हो जाता है। इनके लिए किसी भी प्रकार का मजदूरी नहीं दिया जाता है। यहाँ काम करने आने का प्रमुख कारण है कि बस्तरांचल के लोगो की प्रमुख आस्था

का केन्द्र माँ–दन्तेश्वरी देवी है। यहाँ के लोगों की अपनी अलग तीज–त्यौहार होने के बावजूद भी वे श्रमदान करने यहाँ आते हैं। वास्तव में माँ दन्तेश्वरी देवी आरण्यकी संस्कृति के अन्तर्गत आती है। माँ दन्तेश्वरी के पूजारीगण आरण्यक ब्राहम्णों से संबंध रखते है। माँ दन्तेश्वरी बस्तर के काकतीय राजघराने की इष्ट देवी है। तथा माँ–दन्तेश्वरी के प्रमुख उपासक यहाँ का राजपरिवार ही है। यहाँ की जो प्रजा है,पूर्व से ही माँ दन्तेश्वरी के हरेक पूजा–पाठ में उपस्थित होते रहने के कारण लोगों में भी आस्था बढ़ता गया जो आज देखने को मिलता है।

काछिन गादीः–

हृदय को छूं जाने वाला बस्तर दशहरा पर्व का उत्सव 'कछिन गादी' नामक परम्परा से प्रारम्भ होता है। काछिन गादी से तात्पर्य यह है कि ''काछिन देवी की गद्दी'' जो कि नुकीले–नुकीले बेल के कांटों से सजी व बनी होती है। जिसमें काछिन देवी की आसन स्थान होता है। पूर्णरूप से यह एक कांटो से संजा झूले की गद्दी होती है। काछिन देवी को ''रण–देवी'' भी कहते हैं। बस्तराचंल में प्रचलित परंपरानुसार यहां की नीच जाति–समुदायों में 'मिरगान जातियों' की काछन देवी इष्ट देवी मानी जाती है। यह जगदलपुर में स्थित पथरागुडा रोड के समीप काछिन गुड़ी के नाम से जाना जाता है। बस्तर के महापर्व दशहरा की शुरूआत काछिन गुड़ी से होती है। यह आश्विन मास की अमावस्या के दिन ''काछिन गादी'' का कार्यक्रम आयोजित होती है।

विधिवत मिरगान पनिका पनका जाति के एक कवांरी कन्या का चयन किया जाता है। जो 16 वर्ष से कम उम्र की हो और दशहरा के समय वह कन्या मासिक धर्म के संक्रमण से दूर होना चाहिए। आश्विन मास की अमावस्या के दिन समय के पूर्व से ही काछिन गुड़ी में भीड़ एकत्रित हो जाता है। कार्यक्रम आयोजित होने के पूर्व सर्वप्रथम माँ दन्तेश्वरी व मावली माता से पुजारियों द्वारा पुजा अर्चना की जाती है। इसके बाद राजपरिवार के साथ गाजे–बाजे के साथ एक मार्गदर्शक के रूप में 'मावली माता' के रूप में काछिन गादी पहुँचती है। काछिन गुड़ी में वह कन्या जिसे कछिन देवी के रूप चयन किये हुए होते है वह काले कपड़े पहनी होती है तथा यहाँ के पुजारीगण कन्या पर काछिन देवी को आरूढ़ कराते हैं इस वक्त 'मोहरी', 'नगाड़ा' व 'धनकूल' बाजा बजाया जाता है। साथ ही महिलाएँ 'रेला–रेला' करके गीत गाते है। जैसे ही कन्या पर काछिन देवी आरूढ़ होती है। उसे बाहर काछिन गादी पर लाया जाता है। इनके सामने परदे के रूप में सफेद कपड़े होते हैं। इन्हें सिरहागण व महिलाएँ अपने हथेली पर लेकर काछिन गादी के चारो और घूमाते हैं तत्पश्चात् कांटो से सजी झूले पर कन्या को लिटा कर झुलाया जाता है।

काछिन देवी के सामने शासन – प्रशासन के लोग और राजा –सिरहा व पुजारिगण प्रार्थना के लिखे करबध खड़े होते है। इसके पूर्व ही काछिन झूले के पास कई सारे रस्म पूर्ण की जाती हैं। बस्तर के राजा काछिन देवी के सामने झुककर बस्तर दशहरा के निर्विघ्न सम्पन्न होने की अर्जी करते हैं। इससे प्रसन्न होकर आज्ञास्वरूप

काछिन देवी राजा के ऊपर पुष्प वर्षा करती है। और इसी को काछिन देवी से अनुमति प्राप्त होना माना जाता है।

एक दंतकथा के अनुसार जब तत्कालीन चालुक्य नरेश दलपतदेव के शासनकाल में एक ऐसी घटना घटी जो आज हम वर्तमान जगदलपुर को जगदलपुर के नाम से जानते व पहचानते हैं। वर्तमान जगदलपुर के समीप कहीं से माहरा जाति के लोग आकर बस गये थे। बस्ती के मुखिया का नाम जगतु था। जगतु के नाम पर ही उस कस्बा का नाम भी पड़ गया । इसके पीछे कारण था की जगतू का वर्चस्व गॉव में कुछ ज्यादा था। कहा जाता है कि जगतूगुड़ा के आस–पास घने जंगल था जिसे आज के लोग भी बताते है। घने जंगल में खुंखार जानवर रहते थे, जिससे पुरा जगतुगुड़ा गॉव परेशान था। एक दिन जगतु किसी तरह बस्तर ग्राम तक गया और वहां के राजा दलपत देव से मुलाकात कर उसने/ राजा से आग्रह की कि हमारी रक्षा करें। राजा दलपतदेव आखेट के प्रेमी थे और एक दिन शिकार करते–करते अपने लोगों के साथ जगतुगुड़ा पहुॅचे। राजा को जगतुगुड़ा पंसद आ गया और वह अपनी राजधानी बस्तर ग्राम से जगतुगुड़ा स्थानान्तरित करने की ठान ली। यह घटना सन् 1725 ई. के आस–पास की है। राजधानी के स्थानान्तरित होने पर जगतुगुड़ा के लोगों के वे निर्भय हो गये। और यहाँ के जनता राजा के भक्त हो गये। राजा ने भी उस बस्ती को इतना सम्मान दिया कि दशहरा मनाने के लिए उस छोटी सी बस्ती की देवी 'काछिन देवी' से प्रतिवर्ष आर्शीवाद मॉगकर अपने आप को कृतार्थ माना। प्रथा चल पड़ी और बस्तर दशहरा का प्रांरभिक कार्यक्रम स्थिर हुआ।

दूसरी दंतकथा यह है कि बस्तरांचल के राजा दलपतदेव के समय जगदलपुर के आस पास कही छोटा सा कस्बा स्थिर था। यहाँ पर कहीं से एक माहरा मिरगान परिवार आकर बस गया था और उस परिवार के मुखिया का नाम 'जगतु' था और इन्ही के नाम पर इस कस्बे को जगतूगुड़ा पड़ गया जो स्वयं एक तान्त्रिक भी था। वे काछिन देवी के उपासक था तथा गांव में इनका वर्चस्व सर्वत्र विद्यामान था। राजा दलपतदेव आखेट प्रेमी था। एक बार किसी तरह राजा अपने दल के साथ शिकार करते–करते जगतुगुड़ा के समीप पहुॅचे और उन्होंने देखा कि एक मादा

खरगोश एक जंगली कुत्ते को चबाकर खा रही है। वे काफी चकित रह गये। और उन्होंने मन ही मन सोंचा कि वाकई यहाँ की मिट्टी में ताकत है और उन्होंने गांव की ओर आगे बढ़ा और मुखिया से पूछ परकर जाना की इन जातियों की ईष्ट–देवी ''काछिन देवी'' है। राजा इस बात से प्रभावित हुए और राजा भी ''काछिन देवी'' को सम्मान प्रदान करने लगे कि बस्तर के महापर्व दशहरा की शुरूआत काछिन देवी के चरणों से होनी चाहिए। ऐसा बस्तर की राजधानी का नाम जगदलपुर हुआ। अंततः राजा की नीच जाति के देवता को अपनाया और कलान्तर में ''जगतूगुडा'' को जगदलपुर से जाना गया।

काछन जात्रा पूजा विधानः–

आश्विन शुक्ल पक्ष 12 को काछन जात्रा पूजा–विधान का आयोजन भंगाराम चौक के पास करीब एक बजे किया जाता है। यहां पूजा आज के जमाने में सिर्फ एक औपचारिकता के तौर पर ही किया जाता है। यह पूजा दशहरा के सही–सलामत सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में की जाती है यह पूजा वर्तमान में एक औपचारिकता मात्र रह गया है। यह पूजा दशहरा के सही–सलामत सम्पन्न होने के लिये कि जाती है। इसमें बस्तर दशहरा समिति के द्वारा पूजा समाग्री व बलि के लिए एक सूअर की व्यवस्था कर दी जाती है। यहां घड़वा जाति के लोग अपनी

विधि–विधान से पूजा करते हैं। पुनः करीब शाम 6 बजे काछन गुड़ी में बस्तर दशहरा के निर्विध्न सम्पन्न होने के उपलक्ष पर धन्यवाद स्वरूप काछिन देवी के समक्ष माँ दन्तेश्वरी के पुजारीयों द्वारा पूजा–अर्चना का जाती है । इस दौरान महिलाओं के द्वारा धनकुल बाजा पुरूषों द्वारा मोहरी, नगाड़ा आदि बाजा बजाया, जाता है। इस पूजा–विधान में काछिन गादी पूजा– विधान की तरह भीड़ देखने को नही मिलता। पूर्व समय में राजा स्वयं ऐसा काछन जात्रा पूजा–विधान की रस्में अदा करते थे। अब समय के साथ हो गया है कि जहाँ राजा पूजा–पाठ या अन्य चीजों में भाग लेने जाते है बस वहीं भीड व चहल –पहल देखने को मिलता है, अन्यथा नहीं।

रैला पूजा विधानः–

बस्तर दशहरे में अनेक ऐतिहासिक परम्परागत रस्में निभायी जाती है। जिसमें काछिन गादी कार्यक्रम के उपरांत मिरगान जाति की महिलाएँ रैला पूजा करती है जिसमें राजपरिवार के लोग भी शामिल होते है। रैला–पूजा के बारे में एक करूणामयी व हृदय स्पर्शी दंत–कथा सुनने को मिलता है। कहा जाता है कि बस्तर प्रथम राजा काकतीयवंशी अन्नमदेव की कोई एक बहन थी जिसका अपहरण शत्रु–सेना के एक सेनापति ने किया था। जिसका संबंध खिलजी वंश से लगाया जाता है। सन् 1313 से कुछ समय पूर्व शत्रु सेना ने इस रैला नाम की राजकुंवारी (बहन) को अपहरण कर लिया और एक–दो दिन के बाद उसे छोड़ दिया था। इस बहन के वापसी पर राजा अन्नमदेव के परिवार वाले ने उस राजकुवांरी (बहन) को अपवित्र समझा तथा राजपरिवार ने अपनाने में इंकार कर दिया। अथ्रात् राजकुमारी के चीख–चीखकर विलाप करने पर भी राजपरिवार ने उसे दोषी ही समझा। इसे देखकर एक हरिजन परिवार पर दया आया और परिवार वाले ने उसे बड़े ही

लाड़–प्यार से अपना लिया। अपनाने के पश्चात् भी राजपरिवार के व्यवहारें। से राजकुवांरी को सहा न गया। अर्थात् राजकुवांरी के दिल में इतना ठेस पहुँचा कि

एक दिन अवसर देखकर उसने वर्तमान भोपालपटनम (बीजापुर) के समीप गोदावरी नदी में जल समाधि ले ली। राज परिवार को इस अप्रत्याशित घटना से कोई लेन देन नहीं था। क्योंकि राजपरिवार ने अपने राजवंश की मर्यादा व गौरव, बहन को निष्काषित कर पहले से ही बचा लिया था। लेकिन मिरगान (पनका) अनुसूचित जाति को रूस अप्रत्याशित घटना से बड़ा अघात पहुॅचा। तब से मिरगान (पनका) जातियों ने अपनी लाड़ली रैला का प्रतिवर्ष अपने ढंग से श्राद्ध–कर्म मनाने का निश्चत किया और रैला की रही श्राद्ध–कर्म गोलबाजार के अंदर एक स्थल पर प्रतिवर्ष मनाया जाता है। राजकुंवारी रैला का वही श्राद्ध –कर्म, काछिन गुड़ी से पूजा–पाठ होने के पश्चात् जुलूस के साथ राजपरिवार, शासन, प्रशासन, सिरहा,गुनिया व पुजारीयों के साथ भीड़ उस स्थान को पहुॅचती है। संध्या के समय चिन्हित स्थल पर रैल देवी के आयोजन के लिए मिरगान जाति का पुजारी तथा इस जाति की महिलाएँ एकत्रित होती हैं। ग्राम तेलीमारेंगा की अनुसूचित जाति की कुँवॉरी कन्या जो कि रियासत काल से उसी ग्राम से निभाती चली आ रही है। उन्हें परम्परा के अनुसार प्रतिवर्ष अवसर दिया जाता है। रैला देवी की वही श्रद्ध –कर्म, बस्तर दशहरा में रेला–पूजा के नाम से जाना जाता है। इस श्राद्धकर्म में मिरगानी महिलाए आज भी रैला देवी के प्रति शोक गीत(रैला–रैला करके) गाते तथा शोक व्यक्त करते है। साथ ही गीतों में कारूणिका चित्रण मिलता है।

कलश स्थापना पूजा–विधानः–

बस्तर की आराध्य देवी माई दन्तेश्वरी के दरबार में अथवा अन्य मंदिरों में नवरात्र पर बस्तरांचल में पिछले 40 वर्षो से लोग अपनी आस्था व मनोकामना की पूर्ति की ज्योत लगातार जला रहे है। पहले दन्तेश्वरी मंदिर में बस्तर राज परिवार के नाम से केवल एक मात्र दीप प्रज्जवलित किया जाता था। लेकिन सन् 1973–74 में रायपुर व जगदलपुर के तीन चार भक्तों ने सर्वप्रथम दन्तेवाड़ा के माई दंतेश्वरी मंदिर के समक्ष अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए दीप प्रज्जवलित किया था। और तब से धीरे–धीरे ज्योत कलशों की संख्या में ईजफा होता जा रहा है। कहा जाता है कि कलशों की स्थापना को लेकर भक्तों में विभिन्न प्रकार की अर्जी–बिनती की आस्था होती है। जो कि भक्तों के मनोकामना के पूर्ण होने हेतु स्थापित करते है। विधि–विधान के तहत जगदलपुर में बस्तर दशहरा संघ व राजपरिवार की से जगदलपुर में दन्तेश्वरी माई के सामने केवल एक दीप प्रज्जवलित किये जाते हे। तथा मावली माता मंदिर में एक व कंकालीन माता मंदिर में एक दीप प्रज्जवलित किये जाते है। जो कि आज हजारों के संख्या में भक्त मनोकामना द्वीप प्रज्वलीत करते हैं।

जोगी बिठाई विधानः–

बस्तर दशहरा में परम्परागत रस्मों में अगला चरण 'जोगी बिठाई' का होता है। एक किवदन्ती के अनुसार पूर्व में दशहरा के अवसर पर एक आदिवासी व्यक्ति दशहरा निर्विघ्न सम्पन्न होने के कामना को लेकर अपने सुविधा के अनुसार राजमहल के समीप बैठ गया। किसी को कोई खबर नहीं थी लेकिन कुछ समय के पश्चात् वह व्यक्ति आकर्षण का केन्द्र बन गया था तथा वह कई दिनों के पश्चात आसन में वो मिट्‌टी में धँस गया था। और राजा ने इन्हें ''जोगी'' का पद दिया। तब से आमाबाल के इस परिवार के लोग पीढ़ी –दर पीढ़ी अपने नाम के आगे जोगी जोड़ते हैं। इसी परिवार में से कोई पुरूष सिरहासार भवन में ''जोगी बिठाई'' की रस्म पूरा करता है। यह प्रक्रिया हर साल एक ही व्यक्ति न कर बदल–बदलकर करते हैं। यह परिवार स्वयं को हल्बा जाति के बताते हैं लेकिन

बाहर के लोग जो इस परिवार से संबंध रखते हैं। वे इन्हें पनका जाति के बताते है जोगी बिठाई रस्म पूर्ण होने के लिए सर्वप्रथम माँ दन्तेश्वरी के सेवक –सेविकाए

(अर्थात् पुजारीगण) माँझी, चालकी व गाजे–बाजे के मंडली के साथ दन्तेश्वरी मन्दिर के मुख्य पुजारी हाथों में लाल कपड़े से ढ़की तलवार के साथ जोगी का स्वगात कर मावली माता मंदिर ले जाते हैं। यहाँ का वातावरण शांत हो जाता है। तथा माँ दन्तेश्वरी के पुजारी के साथ बस्तर दशहरा समिति के कुछ लोग व जोगी मावली माता मंदिर में प्रवेश करते हैं। मावली माता के चरणों में जोगी षष्टांग प्रणाम करते हैं आशीर्वाद प्राप्त होने के पश्चात् उठते हैं, मावली माता के पूजा–अर्चना यहाँ के पुजारी करते हैं तथा मावली माता की आरती और जोगी का आरती होता है। तब तक सभी व्यक्ति मौनधारण कर जोगी के सफल योगासन के लिए मन ही मन में प्रार्थना करते हैं। इसके बाद जोगी को फूल–माला पहनाया जाता है। तत्पश्चात् इनके बाहों पर तलवार बांध दी जाती है। जिसे धारणकर

सिरहासार भवन की ओर आगे बढ़ते हैं बस्तर में निवासरत मुण्डाजाति के लोग द्वारा बनाया जाने वाला विशिष्ट ''डिबडिबी'' 'बाजा' जिसे मुण्डा बाजा भी कहते है। पूर्णतः 'मुण्डा बाजा' (डिबडिबी) का प्रभाव पूरे दशहरा में रहता है इसी के साथ

माँझी–चालकी जोगी को सिरहासार भवन पहुँचाकर माँ दन्तेश्वरी मंदिर की ओर जाते हैं। जोगी–बिठाई के बाकी रस्म सिरहासार में पुजारीगण करते हैं। विधि–विधान के अनुसार नारियल, धूप,अगरबत्ती आदि के साथ पूजा की जाती है। फिर जोगी को बैठने के लिए पूर्व में घास पूस अब आधुनिक समय में गद्दा बिछाया जाता है। तत्पश्चात् यहाँ के प्रमुख पुजारी जोगी से गले मिलते हुए आसन पर बैठ जाता है। इसके बाद से ही लोगों की भीड़ दर्शन के लिए पूरे नौ दिनों तक उमड़ती रहती है। जोगी की सफेद पोषाक, पूर्व में सफेद धोती अब सफेद पैजामा–कुरता होता है जो शासन की ओर से व्यवस्था की जाती है। जोगी इन नौ दिनों तक पानी फल व दूध को आहार के रूप में ग्रहण करता है। बस्तर दशहरा में आयोजित विभिन्न विधि–विधानों व कार्यक्रमों को जोगी ही एक ऐसे व्यक्ति है जो जोगी बिठाई को छोड़ अन्य कार्यक्रमों में भाग नही ले पाता है।

सिरहासार भवन का नामकरण

आज का जो सिरहासार भवन दृष्टव्य है वह पूर्व में नही था। यहाँ पर सिर्फ एक झोपड़ी थी जिस पर एक सिरहा बैठता था तथा लोगो की दुःख, तकलीफ को दूर करता था। आज का जो सिरहासार भवन है उसी सिरहा के बैठने पर इस भवन का नाम भी सिरहासार भवन पड़ गया। इससे पता चलता है कि प्रत्येक व्यवस्था पर आधुनिकता का प्रभाव जा रहा है।

बेल पूजा तथा माँ दन्तेश्वरी को न्यौताः–

परमारानुसार बस्तर के लोग ग्राम सरगीपाल को माँ दुर्गा का वास स्थान मानते है। बस्तर दशहरा में शामिल होने के लिए माँ दुर्गा को निमंत्रण देने के लिए आश्विन शुक्ल पक्ष सप्तमी को राज परिवार,दन्तेश्वरी मंदिर के पुजारी व माँझी–चालकी आदि लोग ग्राम सरगीपाल पहुँचते हैं। यहाँ जाकर परम्परानुसार बेल पूजा की जाती है। बस्तर संस्कृति के परम्परानुसार जैसे ही जगदलपुर से राज परिवार व समस्त लोग सरगीपाल पहुँचते हैं तब नृतक दल नृत्य करते हुए बेल वृक्ष के पास तक उन्हे ले जाते हैं परम्परानुसार बेल वृक्ष में ग्राम की कुल देवी दुर्गा का

आहान किया जाता है। इसके पश्चात् परम्परानुसार पूजाकर बकरे की बलि दी जाती है तथा बेल को तोड़ा जाता है। इसके पूर्व अश्विन शुक्ल पक्ष षष्टमी को रथ परिक्रमा के बाद पुजारीगण सरगीपाल पहुँचते हैं और फिर बेल युग्म को तलाश कर उस पर निशान स्वरूप लाल कपड़ा और नारियल बांधा जाता है। दूसरे दिन (सप्तमी) इसी बेल की पूजा की जाती है और बेल को तोड़ा जाता है। इस प्रकार से बस्तर दशहरा को सम्पन्न कराने में इस पूजा–विधान का भी अपना अलग महत्व है।

न्यौताः–

महापर्व बस्तर दशहरा में शामिल होने के लिए माँ दन्तेश्वरी (मावली माता) को परम्परानुसार निमत्रंण दिया जाता है इस मौके पर बस्तर के राजपरिवार के साथ पुजारीगण,बस्तर दशहरा के समिति के सदस्यगण व शासन–प्रशासन के अनेक लोग दन्तेवाड़ा माँ दन्तेश्वरी मंदिर के समक्ष उपस्थित रहते है। तथा माँ दन्तेश्वरी के विशेष आरती कर बस्तर दशहरा में शामिल होने के लिए मावली माता को आमंत्रित करते है।

मावली माता का आगमनः–

आश्विन शुक्ल पक्ष अष्ठमी को देर रात 'जिया–डेरा (जगदलपुर)' में मावली माता का आगमन होता है। 'जिया–डेरा' पर रूकने के लिए स्थान दिया जाता है। जगदलपुर प्रस्थान होने के पूर्व माँ दन्तेश्वरी (मावली माता) की डोली की पूजा–अर्चना विधिवत् दन्तेवाड़ा के पुजारीगण और यहाँ के शासन–प्रशासन करता है तथा माता जी के डोली के साथ जिया (पुजारी) और उनके साथियों के साथ जगदलपुर के रवाना कराया जाता है। इस मौके पर जगदलपुर से दन्तेवाड़ा के बीच जगह–जगह पर माँई जी की डोली व छत्र के दर्शन व आर्शीवाद ली जाती है।

मावली परघाब पूजा विधानः–

बस्तर दशहरा में मावली परघाव का दृश्य विशेष होता है जो कि अति उत्साह पूर्व और आनन्दायक होता है। डोली को सम्मान पूर्वक अतिथ्य दिया जाता है। लोकदेवी दंतेश्वरी की छत्र–छाया में आदर प्राप्त करने हेतु बस्तर दशहरा के आमंत्रण में पधारे विविध ग्रामों के देवी–देवता मावली परघाव में सम्मिलित होते है। जैसे ही मावली माता की डोली जिया डेरा पर पहुँचता है इस बीच डोली को लेकर आए पुजारियों के पैर धोकर उनका स्वागत किया जाता है। जियाडेरा में पहुँची मांईजी की डोली का दिनभर स्वागत –सत्कार किया जाता है। परम्परानुसार शाम को करीब 8 बजे मावली परघाव का कार्यक्रम होता है इस कार्यक्रम में माई जी की डोली को जिया (पुजारी) के द्वारा जिया डेरा से सुकमा जमीदार के कंधे पर दिया जाता था फिर कुटरू जमीदार, पुरि पटनम जमीदार तत्पश्चात कुटरूबाड़ा में राजा के द्वारा दर्शन के बाद वे अपने कंधो रखा जाता थे। लेकिन अब सीधे जिया डेरा से पुजारी लोग माई के डोली को अपने कंधे पर लेकर कुटरू बाड़ा में पहुचते है। कुटरूबाड़ें में राजा

व साथी अपने कंधे पर उठा लेते हैं। तब तक मावली की डोली के दर्शन हेतु भक्तों की भीड़ का ताता लग रहता है। मावली परघाव बस्तर दशहरा का सबसे आकर्षक

नजारा होता है। बस्तर समिति की ओर से बहुत फटाखे फोड़े जाते हैं, मावली माता के पथ पर बहुत फूल बिछाए जाते है।

कुटरूबाड़ा से लेकर माँ दन्तेश्वरी मंदिर तक का रास्ता करीब एक किलोमीटर है, जिसे तय करने में इस समय करीब 1:30– 2:00 घण्टा लग जाता है। मावली माता के डोली को राजा, राजगरू, माई दन्तेश्वरी के मुख्य पुजारी और राजपरिवार के लोग अपने कंधे पर लेकर माई दंतेश्वरी मंदिर तक पहुँचाते हैं।

इस दौरान मुण्डा बाजा,माँझी–चालकी के साथ मावली माता, दन्तेश्वरी मंदिर तक पहुँचाते है। इस अवसर पर लोगो के चेहरे पर खुशी देखते ही बनती है। कोई पग पसारने के लिए पूरी सड़क धोता है, तो कोई बस एक झलक पाने के लिए तरसता है। ''मावली'' दन्तेश्वरी देवी का ही एक रूप है जो कि संस्कृत के ''मौली'' शब्द का अपभ्रंश मालूम पड़ता है, जिसका अर्थ मूल शीर्षस्थ, मौलिक होता है। मावली देवी, माँ दन्तेश्वरी का ही प्रतिरूप मानी जाती है। दन्तेवाड़ा में एक मावली माता की मूर्ती बनाई जाती है। जिस पर चंदन का लेप होता है और नये कपड़े से सजाया जाता है। मावली माता को आज भी बस्तर अंचल के राज परिवार के लोग जन प्रतिनिधि, गणमान्य नागरिक बड़े सम्मान के साथ नगर सीमा से स्वागत करके सम्मान देते है। मावली माता की पालकी को जगदलपुर के दंतेश्वरी मंदिर में अतिथि के रूप में स्वीकारा जाता है। इसे मंदिर में सबंसे सामने के जगह पर रखा जाता है, ताकि लोग मावली माता के अच्छी तरह से दर्शन कर सकें।

नवरात्र पूजा एवं रथ परिक्रमाः—

जोगी बिठाई के पश्चात् आश्विन शुक्ल द्वितीय से आश्विन शुक्ल सप्तमी तक बस्तर दशहरा अपना ''नवरात्र'' का कार्यक्रम आरंभ करता है। इस समय पर सुबह सर्वप्रथम पुजारियों द्वारा अपने—अपने मंदिरों में पूजा—पाठ की जाती है तथा इसके अंतर्गत ब्राह्मण वर्ग संकल्प पाठ करता है। इस दिन से लगभग प्रतिदिन जप और पाठ सभी मंदिरों में की जाती है। बड़े उत्साहपूर्वक माता का दर्शन पाकर भक्त दन्तेवाड़ा की ओर मन्नते लेकर पैदल यात्रा करते हैं और वहाँ माई दन्तेश्वरी की दर्शन पाकर खुशी—खुशी अपने घर की लौटते है। नवरात्र की जो पूजा की जाती है इसका प्रमुख रहस्य यह है कि माँ दुर्गा के कुल नौ रूप इस प्रकार है— शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा, महागौरी, कालरात्रि, कात्यायनी, स्कन्दमाता, सिद्दीदात्री जिसकी पूजा की जाती है। इन नौ रूपों के पूजा का विधान है

रथ परिक्रमाः—

बस्तर दशहरा में रथ परिक्रमा का एक अनुठा रहस्य है। आश्विन शुक्ल पक्ष द्वितीया से लेकर सप्तमी तिथि तक चलने वाले चार पहिये के रथ को ''फूलरथ'' कहा जाता है। चार पहिये वाले रथ को परिक्रमा (चलाने) करने से पूर्व इसकी विधि—विधान के अनुसार

पूजा–अर्चना की जाती है। पूजा–अर्चना के जो रस्में होती है। इसमें चॉवल, अगरबत्ती, नारियल एक काले बकरा, एक लाल बकरा तथा मोंगरी मछली व सामने के दोनों पहियों के सामने एक–एक अण्डा रखा जाता है। पुजारियों के द्वारा रस्म निभाने के पश्चात् विभिन्न गाँवों से आए–धुरवा तथा मुरिया लोग रथ खीचते है। इस प्रकार जैसे ही रथ को जगन्नाथ मंदिर के ठीक सामने लाकर खड़े करते है। विधि–विधान के अनुसार माँ दन्तेश्वरी के मुख्य पुजारी माँ दन्तेश्वरी के छतर (छत्र)को अपने साथ मुण्डा बाजा, माँझी,चालकी आदि लोगों के साथ सर्वप्रथम मावली माता मंदिर में पूजा करते हैं इसके बाद क्रमानुसार कंकालीन माता, जगन्नाथ व जैसे ही जगन्नाथ मंदिर में दर्शन करने के पश्चात् सभी लोग जुलूस सहित रथ की ओर

आगे बढ़ते है जहाँ रथ पर सीढ़ी से पुजारी माँ दन्तेश्वरी के छत्र(छतर) को लेकर सीढ़ी से रथ के दो मंजिला पर रथारूढ होते हैं । तत्पश्चात् जगन्नाथ मंदिर से 'पनारिन' हराबाई रथ पर फूल फेंक कर माई जी के छात्र (छतर) की नजर उतारती है।

इसके बाद पाँच पुलिस बलों द्वारा रथ की सलामी दी जाती है तथा सम्मानपूर्वक बन्दूक से की आवज आकाश की ओर हवाई फायरिंग की जाती है तत्पश्चात् रथ परिक्रमा शुरू हो जाती है। परिक्रमा होने के पश्चात् 'रावरीन' के द्वारा रथ की अंतिम आरती उतारी जाती है। पूर्व समय में रथ में रथारूढ होने की प्रक्रिया कुछ ऐसी थी। यहाँ जब रथ परिक्रमा होती थी तब प्रथम दिन रथ चढ़ने को राजा का वेश नीले कपड़ों का रहाता है, नीला वस्त्र पहनते हैं, गले में दुपट्टा डाले रहते हैं। अलंकार शरीर में नही रहता है केवल चन्दन शरीर भर में लगाते हैं। सिर में फूलों का मुकुट बनाते हैं। हाथ गला इत्यादि में फूलों के अलंकार पहने हुए होते है। दूसरे दिन लाल वस्त्र और एक दुपट्टा पहनते है। चन्दन पुष्प प्रथम ही के अनुसार रहते है। और चार दिन तक यही वेश लगातार बनाया जाता है। जबकि आज माँ दन्तेश्वरी के छत्र को दन्तेश्वरी मंदिर के मुखिया पुजारी लेकर रथ पर रथारूढ़ होते है।

महा अष्टमी दुर्गा पूजा विधानः–

बस्तर दशहरा का संबंध किसी भी दूसरे स्थानों के दशहरा से कोई तालूक नही रखता है। यहाँ महाअष्टमी अपने समय के साथ ठीक बस्तर दशहरा में आठवें दिन ही पड़ता है, इसलिए यहाँ के स्थानीय लोक महाअष्टमी से परिचित हुए हैं और वे दर्शन करना अधिक पुण्य व महत्व होता है। क्योंकि लोगों का मानना है कि माँ

दुर्गा के नौ रूपों के समझ कहीं माँ दन्तेश्वरी का महागौरी का वर्ण पूरी तरह गौर है। इस गौरव वर्ण की उपमा शंख, चन्द्र और कुन्द के फूल से दी गई है। वृषभ पर विराजित महागौरी की चार भुजाएं है। नवरात्र के आठवें दिन महागौरी की आराधना करते हुए भक्तों को तपस्या व आराधना पर अधिक ध्यान देते हैं। जिस तरह इन्होंने भगवान शिव को पति के रूप में पाने के लिए असीम तपस्या की थी। मनुष्य को भी समाज में व्याप्त क्लेश को दूर करने के लिए पूजा–अर्चना व उपासना करते। साथ ही बाहर के साथ आन्तरिक सौंदर्य (निर्मल मन,इन्द्रियों का संयम) के लिए भी माँ की आराधना करते है। इस तरह संसार में विविध माया मोह है जिससे बचने की प्रयास करनी चाहिए। महाअष्टमी कई पूजा इसी कामना से किया जाता है।

निशा जात्रा पूजा विधानः–

बस्तर दशहरे में कुल 17 दिनों तक कुछ न कुछ प्रथाएँ तांत्रिक–साधना से सीधे सम्बन्ध रखती है। 'निशा–जात्रा', रात्रिकालीन पूजा विधान है, यहाँ निशा का अर्थ रात्रि तथा जात्रा से तात्पर्य पूजा–पाठ से लगाया जाता है। उल्लेख है कि प्राचीन बस्तर, तन्त्र साधना का एक गुमनाम केन्द्र रहा है। प्राचीन बस्तर शिव और शक्ति का एक निश्चित उपासनालय रहा है। बस्तर दशहरा में होने वाले प्रत्येक पूजा–विधान में बलि के बारे में स्पष्ट वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि माँ दुर्गा ने महिषासुर का वध किया था और इस दिन यहाँ भैसा की बलि दी जाती थी।

अब वर्तमान में दुर्गा महाअष्टमी के दिन अर्धरात्रि में अनुपमा चौक में स्थित 'निशा जात्रा गुड़ी' में ''निशा जात्रा'' पूजा विधान सम्पन्न होता है। मावली मंदिर से ''राउत समाज'' के लोगों द्वारा बारह कावड़ों में ''भोग'' एवं पूजा सामग्री लाई जाती है। माई दन्तेश्वरी कमेटी के सदस्य एवं समस्त देवी–देवताओं के साथ धूमधाम से बाजे–गाजे के साथ लोग यहाँ पहुँचते हैं। बारह कावड़ों के भोग को अपनी निश्चित जगह पर रखा जाता है तद्उपरांत राजा के द्वारा पूजा विधान की समस्त रस्मों को पूर्ण की जाती है। इसके बाद कुल निर्धारित 13 बकरों की बलि दी जाती है। अश्विन –शुक्ल अष्टमी तथा नवमी तिथि को रथ परिक्रमा नहीं होती है, कहा जाता है कि यह दिन बलि अर्पित कर आँचलिक देवी– देवाताओं को प्रसन्न करने का दिन होता है। 13 बकरों की बलि के पश्चात् प्रसाद के रूप में बकरे की बली के कार्यक्रम जुड़े ''मांस'' शासन– प्रशासन, सदस्यों व भक्तों तक पहॅुचते हैं। ऐसा माना जाता है कि निशा जात्रा गुड़ी में माता दन्तेश्वरी व माता माणिकेश्वरी देवी का निास स्थान है। इस 'गुड़ी' (मंदिर) का निर्माण राजा के द्वारा 20वीं शताब्दी में किया गया था। वर्तमान मेंशासन के द्वारा इसका मरम्मत समय –समय पर किया जाता है।

कुवांरी पूजा विधानः–

कुंवारी पूजा–विधान एक ऐसा अनुठा रहस्य है। जो रामयण, महाभारत जैसे ग्रन्थ से संबंध जोड़ता है। यह पूजा माँ दन्तेश्वरी मंदिर में सम्पन्न की जाती है। यहाँ(मंदिर) के पुजारीगण आरण्यक ब्राहमण है तथा ये माँ दन्तेश्वरी की सेवा सत्कार भी करते आ रहे है। बताया जाता है कि ये आरण्यक ब्राहमण उड़ीसा से पूजा के लिए 700 वर्ष पूर्व राजा के द्वारा लाये गय है। इनका स्थानान्तरण इस प्रकार हुआ जब राजा पुरूषोत्तमदेव उड़ीसा (जगन्नाथपुरी) गये थे तब लौटते समय उधर से कुछ ब्राह्मण परिवारों को अपने राज्य में लेते आये थे क्योंकि उनके व्यवस्थित रथ चलाने की प्रक्रिया से काफी प्रभावित हुए थे। राजा के आग्रह पर जगन्नाथपुरी तथा उसके आस–पास के ब्राह्मण राजा के साथ चले आये। गिनती में केवल 60 परिवार थे। आज भी उन परिवार के वंशज साठ घरिया के नाम से जाने जाते हैं। वे ब्राहम्ण परिवार राजा के द्वारा चक्रकोट राज्य में इसलिए लाए गए थे, ताकि वे प्रतिवर्ष रथ यात्रा पर्व में पूजा–पाठ आदि धार्मिक कार्य सुचारू रूप से निपटाते रह सकें। वे ब्राहम्ण परिवार चित्रकोट के आगे बिंता और भेजा नाम,गॉव हैं जहाँ उन्हे भेजा गया। तथा सन् 1705 ई.में ग्यारहवीं पीढ़ी के चालुक्य नरेश रक्षापालदेव,बस्तर ग्राम में सिंहासनारूढ़ हुए थे तब बस्तर इतिहास में प्राप्त एक उल्लेख के अनुसार उड़ीसा से दूसरी किश्त में 300 परिवार ब्राहम्ण गुरिया बसे थे। ब्राहमण होने के नाते माँ दन्तेश्वरी व राजा के विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम में पुजारी बनाकर अपनी सेवा प्रदान कर रहे हैं। यहाँ राजा नौ कन्याओं की पूजा,माँ–दुर्गा के नौ रूप समझकर परम्परागत विधि–विधान के अनुसार करते हैं। इन कन्याओं की आयु–सीमा करीब 2–10 वर्ष की निर्धारित होती हैं पूजा–पाठ के पश्चात् रोटियाँ खीर आदि ग्रहण कराया जाता है। इससे हटकर समाज के किसी परिवार की महिलाएँ अगर उपवास करती हैं तो वह नौवें दिन अपना व्रत तोड़ने के पहले अपने आप–पास के नौ कन्याओं को अपने घर बुलाती हैं। और बैठाकर वह दुर्गा के नौ रूप समझकर सर्वप्रथम उनके पैर धोया जाता है तथा अपने साड़ी के आँचल से उनके पैर पोंछा जाता है तत्पश्चात् आरती,कुमकुम,चन्दन आदि के श्रृगांर पूजा करने के बाद उन्हें

भोजन कराया जाता है। अन्त में उन्हें भेंट स्वरूप उपहार दिया जाता है और अन्त में उपासिनव्रत तोड़ती है।

जोगी उठाई पूजा —विधान

कुंवारी पूजा—विधान के पश्चात् शाम को करीब 6—7 बजे जोगी उठाई पूजा—विधान की रस्म पूरा की जाती है। जब से जोगी बैठता है तब से लोग दर्शन करने बड़ी के लिए श्रद्धा से आते है। अंत में नौवें दिन

जोगी उठाई रस्म पूर्ण की जाती है जिसमें माँ दंतेश्वरी माई के छत्र (छत्तर) को लेकर साथ में मुण्डा बाजा,माँझी—चालकी, नाईक व बस्तर दशहरा समिति के लोगो के साथ जुलुस सहित मावली माता मंदिर, कंकालीन माता मंदिर व रामचन्द्र देव मंदिर में विधि—विधान के साथ पूजा अर्चना की जाती है। तद्उपरांत सभी लोग सिरहासार भवन में आते हैं और पुजारीयों द्वारा धन्यवाद स्वरूप पूजा—अर्चना कर एक बकरे की बलि दी जाती है। तलवार को वापस दे दिया जाता है जिसे दुर्गा का स्वरूप मानकर नौ दिनों तक जोगी व्रत धारणकर बैठे रहते हैं। फिर जोगी के सगे—संबंधी जोगी के हाथ से पकड़कर उठाते हैं तथा नौ दिन के उपवास के बाद काफी कमजोर दिखाई पड़ता है।

भीतर रैनीः–

विजय दशमी के दिन 'भीतर रैनी' का कार्यक्रम सम्पन्न होता है। भीतर रैनी से तात्पार्य यह है कि माई दन्तेश्वरी शहर में उपस्थिति विभिन्न देवी–देवताओं से और बाहिर गांव से आये विभिन्न देवी–देवताओं से मुलाकात करती है। यहाँ रथ 8 चक्कों का होता है जो 'विजय रथ' का प्रतीक माना जाता है। इस रथ पर पूर्व में झूले की व्यवस्था होती थी, जिसमें राजा वीरधारी वेश मे बैठकर झूलने की परमपरा का निर्वहन करते हैं। इस रथ के दोनो छोर पर दो–दो (चार) घोड़े, बाँधे जाते है। इसके पीछे का रहस्य यह है कि जब राजा पुरूषोत्तम देव ने विजय प्राप्तकर रतनपुर के जंगलो से वापस लौट रहे थे तब उनके विजय सेनाओं ने उनसे प्रश्न किया कि इस विजय के याद में आप हमें क्या प्रदान करेगें जिसे हम याद रख सकें। तो राजा पुरूषोत्तम देव ने अपने शरीर से एक कपड़े नि काल के दिये और बोले कि यह कपड़ा विजय का प्रतीक होगा जो हमेशा यादगार प्रतिज्ञा के रूप में लहराता रहेगा। जिसे ''बघुला उड़ाना'' भी कहा जाता है। जब रथ परिक्रमा की जाती है तो विजय रथ के दोनो छोरों पर बंधे दो–दो घोड़ों के ऊपर उछालकर उसे फिर लपटते है। इसके पहले रथ को अच्छी तरह से सजाया जाता है। विधि–विधान के अनुसार इसकी पूजा–अर्चना की जाती है। दो बकरों की बलि दी

जाती है। तब सिरहासार भवन के सामने ही माँ दन्तेश्वरी मंदिर के पुजारी माई जी के छत्र को लेकर रथारूण होते है। इसके बाद से रथ को केवल किलेपाल के 30 परगना के माड़िया जनजाति लोग ही पीढ़ी–दर पीढ़ी खीचतें आ रहे है। रथ को देर–रात सिरहासार पहुँचाया जाता है जहाँ रथ के नजरे रावरीन महिलाएँ उतारती हैं तथा देर रात को रथ को चोरी कर कुम्हड़ाकोट के जंगल में लेजाकर छुपा दिया जाता है।

बाहर रैनीः–

परम्परानुसार 'बाहर रैनी' के दिन राजा विजय रथ को ढुंढ़ते हुए कुम्हड़ाकोट पहुँचते है, जहाँ पर विभिन्न स्थानों से आये पुजारीगा एवं ग्राम देवी–देतवाएँ छत्रों के साथ मौजूद रहते है । यहाँ सर्वप्रथम राजा आकर मावली माता, काछन देवी,रैला देवी की आरती उतार कर दर्शन करते हैं। इससे पूर्व राजा के साथ बाजे–गाजे तथा नृतक दल इनके सामने –सामने नृत्य करते हुए प्रवेश करते है। जबकि परम्परानुसार ऐसा नही होता था। इस (एकादशी) दिन राजा देवी–देवातओं का पूजा करते है। फसल जब पक जाता है तो सबसे पहले अपने ''इष्ट देवी–देवताओ को अन्न अर्पित करते है और प्रसाद ग्रहण करते हैं इस 'नवाखाई या 'नुआखाई' कहा जाता है। प्रसाद के रूप

में नये अन्न से बनी भात खीर व पूरी आदि होते है।

इस दिन राजा परिवार तथा अन्य जनप्रतिनिधियों के साथ –साथ जनसामान्य भी नया अन्न ग्रहण करते है । इस नवाखाई के पश्चात् दन्तेश्वरी मांई के छत्र को लेकर पुजारी विधि–विधन के अनुसार रथारूढ़ होता है तथा रथ को खीचने का कार्य किलेपाल परगना के आदिवासीयाँ करते हैं। रथ के सामने क्रमशः मावली माता, दन्तेश्वरी माँई दन्तेवाड़ा, महाराजा, देवी–देवताएँ, नृतक दल और सबसे सामने तीर– धनुष, टंगिया धारण किये व्यक्ति अत्यन्त आकर्षक लगते है। रथ कुम्हड़ाकोट से लालबाग होता हुआ कोतवाली सदररोड़, गुरूनानक द्वार से राजमहल, सिंहद्वार के पास पहुँचा है तथा देवी–देवताओं को आसन दिया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को ''बहार रैनी'' कहा जाता है। रथ को कुम्हड़ाकोट से सिंह द्वार तक खिंचकर लाने में करीब 2–3 घंटे का समय लग जाता है। इस दिन हजारों की संख्या में उपस्थित जनसमुदाय, रंग–बिरंगे कपड़ों से सजे आदिवासी इस अवसर पर विशेष आकर्षण का केन्द्र होते है। कुम्हड़ाकोंट से दन्तेश्वरी मंदिर तक के सफर में वीर वेश (महाराजा के वेश) के साथ पेश आए राजा के अभिवादन को लोग बड़े गर्व से स्वीकार करते है।

मुरिया दरबारः–

तात्कालीन समय से अब तक होते आ रहे मुरिया दरबार का महत्व बस्तर दशहरा में महत्वपूर्ण है। आश्विन शुक्ल 12 को शाम ''सिरहासार'' भवन में लगभग 5 बजे से ग्रामीण तथा शहरी मुखिया की आम सभा लगती थी जिसे ''मुरिया दरबार'' कहा जाता था। इस दरमियान राजा स्वयं प्रजा के सुख दुःख को सुनने के लिए उपस्थित रहते थे। अर्थात् राजा–प्रजा के बीच विचारों का आदान प्रदान हुआ करता था। विभिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु खुली चर्चा हुआ करती थी। उस जमाने में दुरांचल क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी भाइयों को कोई विशेष नाम से नही जाना जाता था। कभी इन्हे वनवासी ग्रामीण या मुरिया कहा जाता था। एक जाति जिन्हे राजा–मुरिया कहा जाता था जो कि मुरिया दरबार में बड़ी रूचि लेते थे तथा इनका घाक भी रहता था। मुरिया दरबार का सूत्रपात्र 8 मार्च 1876 को पहली बार हुआ था। धीरे–धीरे समय बदलता गया और वर्तमान में मुरिया दरबार का जो दृश्य देखने को जो मिलता है बिल्कुल भिन्न है। पहले दरबार के मौके पर जो वातावरण राजा तथा प्रजा के बीच देखने को मिलती थी वह अब कायम नही है। अब के समय में मुरिया दरबार का आयोजन दोपहर को होता है।

अब के मुरिया दरबार में स्वयं मुख्यमंत्री, मंत्रीगण, सांसद, विधायकगण,राजा, माँझी, चालकी, नाईक, मेम्बर, मेम्बरीन व ग्रामीणों उपस्थित तो रहते हैं पर दरबार की केवल औपचारिकता ही निभाई जाती है। किसी भी प्रकार का कोई उत्साह दिखाई नही पड़ता । अब के मुरिया–दरबार में प्रजा न तो अपनी कोई बात खुलके रख सकती है और न ही उस बात का कोई हित हो पाता है। बस्तर दशहरा को सम्पन्न करने में योगदान देने वाले ग्रामीणों की कई समस्याएँ सुनने को मिलता है लेकिन वे सुनाएं किसको। बड़े मुश्किल से मुरिया–दरबार के दौरन परिचय–पत्र वालों को सिरहासार भवन में प्रवेश करने को मिलता है। लेकिन वे प्रवेश करते सहित गूंगे बनकर बैठे रहते हैं। समय में बंधकर औपचारिकता निभाने के लिए केवल तीन से चार व्यक्तियों को अपनी बाते रखने को मौका मिलता है। पर

वह समय भी बड़ो को अभिवादन करते खत्म हो जाता है। अर्थात मुरिया दरबार का वर्तमान पूर्णतः शासन–प्रशासन के तौर तरीके से होने लगन है।

कुटुम्ब जात्रा पूजा विधानः–

बस्तर दशहरा पर्व के माहौल सम्पन्न होने के बाद आश्विन शुक्ल 13 को कुटुम्ब जात्रा पूजा–विधान का आयोजन किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि विभिन्न प्रांतो से आये देवी–देवताओं को यहां से वापस खुशी खुशी अपने क्षेत्र को विदा होने हेतु कुटुम्ब जात्रा का आयोजन किया जाता है। कुटुम्ब जात्रा का तात्पर्य यह है कि देवी–देवताओं के पूरे परिवार का एक साथ '' पूजा –आर्चना'' करना। ऐसा माना जाता है कि जिस प्रकार मनुष्यों का अपना परिवार होता है। उसी प्रकार का देवी–देवताओं का भी अपना परिवार होता है। कुटुम्ब जात्रा के इस अवसर पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूपसे देवी–देवताओं के बीच किसी भी प्रकार का जाने –अनजाने में भूल–चूक होती है तो एक–दूसरे को क्षमा याचना करते हुए, उनकी सम्मान विधिवत

पूजा–अर्चना और शक्ति के अनुसार बलि भी अर्पित कर इस विदाई समारोह का निष्पादन किया जाता है साथ ही सुख–समृद्धि की कामना की जाती है। समय के अनुसार प्रात 11:30 बजे के आस–पास गंगा मुण्डा में स्थित महात्मागाँधी स्कूल के प्रांगण में '' कुटुम्ब जात्रा'' पूजा विधान का आयोजन बड़ी ही निष्ठापूर्वक सम्पन्न की जाती है। यहाँ के प्रमुख पुजारी राजा होते हैं, पूर्व समय में यहाँ देवी–देवताओं के साथ डोली,झण्डा व छत्र तथा भक्तों की भीड़ होती है। लोग अपने आस्था के अनुसार यहाँ पर अपनी घरों से बलि के लिए बकरा,मुर्गा बतख आदि देवी–देवताओं के लिए चढ़ाते है। सामुहिक रूप से यहाँ पर करीब 12–15 बकरे 7–8 मुर्गे, व 3–4 बतख की बलि होती है। बस्तर का यह पर्व आपसी प्रेम व पुरातन संस्कृति के प्रति गहन निष्ठा का प्रतीक है। आपनी विशिष्टताओं के कारण बस्तर दशहरा विश्व मे अपनी ख्याति बिखरे हुए है। बस्तर दशहरा विभिन्न जाति –धर्मो की अपनी लोक संस्कृति का एक ऐतिहासिक उत्सव है।

माई दन्तेश्वरी (मावली) की बिदाई पूजा विधान कार्यक्रमः–

बस्तर दशहरा का इस परम्परागत पर्व के अंतिम चरण में मावली माता (दंतेश्वरी (दन्तेवाड़ा)) के विदाई समारोह के साथ बस्तर दशहरा सम्पन्न होता है। इस मौके पर माई दंतेश्वरी के मंदिर में विधि–विधान के साथ सभी प्रमुख देवीयों का पूजा–विधान कर आभार ज्ञापित करते हुए बलि दी जाती है। इस समय जिस प्रकार मावली परघाव में लोगो की भीड़ देखने को मिलता है ठीक उसी तरह विदाई समारोह में भी लोगों की भीड़ देखने को मिलता है। पूजा–अर्चना करने के पश्चात् महाराजा व सभी छत्र व डोली (मावली माता) को सिंह द्वारा के सामने लाते हैं। जहाँ डोली को रखने के लिए आसन बनी रहती है वही रखते है। तत्पश्चात् बदूक की गोलियों से पुलिस द्वारा सलामी दी जाती है। आरती के पश्चात्, भेंट आदि देकर लोग अंतिम दर्शन करते है। इसके बाद मावली माता की छत्र तथा डोली को नियमानुसार सिंह द्वार से जिया डेरा तक महाराजा, परिवार और पुजारीगण अपने कंधों पर लेकर पहुँचाते हैं। इस दौरान रास्ते में जगह–जगह पर भक्तगण फूल बरसाते व आरती उतारते हैं। नियमानुसार मावली माता के डोली के सामने–सामने मुण्डा बाजा बजता रहता है। मान्यता है कि मावली माता की अंतिम विदाई जगदलपुर से मंगलवार या शनिवार को ही शुभ होता है। इसलिए इन दोनो दिवसों में किसी एक दिवस पर ही मावली माता की बिदाई दी जाती है। बाकी अन्य देवी–देवताओं की अंतिम विदाई कुटुम्ब जात्रा के पश्चात् हो चुकी होती है। जियाडेरा में कुछ देर रूकने के पश्चात् वाहनों की सहायता से मावली माता दन्तेवाड़ा की ओर रवाना हो जाती है,(साथ में मावली माता के पुजारीगण रहते हैं)।

सम्मिलित सहयोगः—

विश्व में अपनी पहचान बनाने वाली बस्तर दशहरा को संचालित करने के लिए कार्य का विभाजन होना जरूरी है। बस्तर दशहरा की जो व्यवस्था (कार्य विभाजन) है वह रियासत काल से ही चला आ रहा है। यह कार्य विभाजन पीढ़ी—दर पीढ़ी अब भी चल रहा है। जिसमु कुछ परिवर्तन के साथ वर्तमान में संचालन हेतु निम्न ढंग से कार्य संचालित किया जाता है।

1. रथ— निर्माण :—

बस्तर दशहरा को सुचारू रूप से चलाने के लिए 'पाट—जात्रा' के पश्चात् विभिन्न कार्यक्रम जोर पकड़ लेती है। बस्तर दशहरे को पूर्ण करने के लिए रथ का होना अति आवश्यक हो जाता है। पूर्ण दशहरा को गरिमा—मय ढंग से सम्पन्न कराने के लिए बस्तर दशहरा समिति का गठन किया जाता है। जिसके तहत प्रत्येक कार्य कई भागों में विभाजित हो जाता है। साफ—सफाई और झाड़न—पोंछन की दृष्टि से बस्तर, दशहरा पहले भी सरकारी था और आज भी सरकारी है। लेकिन बस्तर रियासतकाल में प्रायः सभी कार्य को करने के लिए लोग रूचि लेते थे, लेकिन समय के साथ बदलाव परिलक्षित होता है। क्योंकि पहले जितने भी श्रम सेवक होते थे वे सब समय आते ही सरकारी भवनों(स्कूल व सार्वजनिक स्थल) पर अपना अस्थाई निवास बना लेते थे और कार्य बड़े ही उत्साहपूर्वक करते थे, लेकिन आज स्थित कुछ बदली हुई है।

लोगों में जो रूचि दिखती थी थोड़ी कम हो गई है। जैसे पहले माचकोट जंगल से 'ठुरलू खोटला' लकड़ी को बैलगाड़ी में बिना बैल के जगदलपुर शहर तक पहुँचाया जाता था। लेकिन आज कुछ अलग व्यवस्था हो गया है। आजकल रथ–निर्माण की पूरी प्रक्रिया प्रशासनिक नियम सें होता हैं। रथ के पहिये के निर्माण के लिए चितालूर के जंगल मोंगरमुही के लिए दरभा जंगल और फाड़े तथा खम्भे के लिए माचकोट जंगल से वनविभाग जल संसाधन (किलेपाल) तथा परिवाहन संघ की गाड़ियों से लकड़ियों को लाया जात हैं। पहले फारो को भी हाथों से ही लोग तैयार करते थे, लेकिन आज कल फारा को महल से चिरवाकर लाया जाता है। बाकी चीजें जैसे मोंगरमोही खम्भे को श्रमिक अपने पारंपरिक औजारों का प्रयोगकर तैयार करते हैं। रथ निर्माण करने के लिए झारगांव, बेड़ाउमरगांव और बड़े डोंगर, आलोर (फरसगांव) के लोग ही करीब 20 दिन के अन्दर ही पूर्ण तैयार कर लेते हैं। यहा कार्य को पूर्ण करने के लिए

सांवरा जाति के लोगों को सौंपा गया है। रथ निर्माण के लिए बड़े–बड़े लोहे की भी जरूरत होती है। उसे भी यहीं के लोहार लोग तैयार करते हैं लोहे को गरम कर आकार देने के लिए कोयले की विशेष जरूरत होती है, जिसे बिरिंगपाल, रायकोट व डिमरापाल के लोगों द्वारा व्यवस्था किया जाता है। रथ को पूर्ण तैयार करने के लिए

करीब 150 मजदूर व श्रम सेवक अपना योगदान व जिम्मेदारी निभाते हैं। रथ के निर्माण की देखरेख माँझी,चुने गये सदस्य व शासन की ओर से पदस्थ जल संसाधन व जंगल विभाग (फारेस्ट) के कर्मचारी अपने निगरानी में रखकर तैयार करवाते है। रथ निर्माण व संचालन पूर्व में बारह पहियों वाला हुआ करता था। जिसमें कई सारे असुविधा व परेशानियाँ आने के कारण कई वर्षो बाद आठवे क्रम के शासक राजा वीरसिंह के द्वारा संवत् 1610 के पश्चात् आठ पहियों का 'विजय रथ' और चार पहियों का 'फूल रथ' प्रयोग में लाया जाने लगा। वर्तमान में यही नियम चल रहा है।

2. **रथ की सजावट**ः—

बस्तर क्षेत्र के अन्तर्गत निवासरत सभी लोगों का प्यार माँ दन्तेश्वरी से इतना निकट है कि वे स्वयं ही माँ दन्तेश्वरी के सभी कार्य को करने के लिए खींचा चले आते हैं। रथ के सजावट के लिए मोंगरापाल के ''भतरा'' जाति के लोग अपना योगदान देते है। लकड़ी से रथ बनाने के पश्चात् अतिर्शीघ्र ही बाकी सजावट को पूर्ण कर लिया जाता है। चार पहिये वाले रथ दो मंजिला का होता है इस रथ में रजत वर्ण के कपड़े होते हैं और नीचे के छत के चारो और नीला और गुलाबी रंग के कपड़े से रथ को सजाया जाता है। चार पहिये वाले रथ को फूल रथ कहा जाता है। इस रथ को कई सारे गेंदा फूल की लड़ियों से सजाया जाता है, जो अति मनमोहक होता है। आज कल बिजली व्यवस्था होने के कारण रथ के पट्टे में बिजली की सुविधा के लिए जनरेटर बाँधकर रखा जाता है। जिससे कि रथ को प्रकाशित व झालर से सजा सके।

इसी प्रकार आठ पहिये वाले रथ को भी सजाया जाता है लेकिन इस रथ में चार पहिये वाले रथ की तुलना में गेंदाफूल की लड़ियाँ कम लगती है। इस आठ पहिये वाले रथ को ''विजय'' रथ कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता में होती है। कि इसमें आगे पीछे चार घोड़े बंधे होते हे जिसमें चार व्यक्ति बैठकर एक —एक कपड़े को उड़ाकर फिर उसे लपेटते है जिसे ''बकुला उड़ाना'' कहा जाता है।

3. **फूल व्यवयस्था:–**

बस्तर दशहरा में रथों व माँ दन्तेश्वरी के मंदिर के लिए फूलों की अत्यन्त

आवश्यकता होती है इन फूलों की अपूर्ति के लिए एक स्वसहायता समूह बनाया गया है जिसमें सूंडी व भतरा जाति वर्ग के 10 सदस्य हैं। इनके स्वसहायता समूह का नाम है ''लक्ष्मी नारायण पुष्प वाटिका''। इनका भी योगदान बस्तर दशहरा में एक वरदान की तरह है ये दस परिवार इस कार्य को पीढ़ी–दर–पीढ़ी करते आ रहे है। आवश्यकता के अनुसार आश्विन शुक्ल द्वितीय से माँ दन्तेश्वरी के विदाई समारोह तक कुल अनुमानित 4500–5000 तक का फूल लड़ियाँ व मालाओं की आवश्यकता होती है। बस्तर दशहरा समिति के लोग फूलों की आवश्यकता आवगत कराते है। तथा पूर्ति लक्ष्मी नारायण पुष्प वाटिका समीति द्वारा की जाती है।

4. **मुण्डा बाजाः–**

पारंपरिक बाद्य यंत्रो से भरा हुआ बस्तर का लोक–जीवन अत्यन्त मनमोहक है। वाद्य यंत्रों के गूंज से यहाँ के लोग मदहोश रहते हैं। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र, विभिन्न अवसरों पर लोक जीवन में प्रयुक्त होते आ रहे है। बस्तरांचल के लोक वाद्यों में नगाड़ा, तुडबुडी, मांदरी और मोहरी की प्रधानता पायी जाती हैं। लेकिन बस्तर दशहरा पर्व में एक वाद्य–यत्रं हैं डिबडिबी मुण्डा बाजा की प्रधानता रहती है। गुलाबी रंग का पगड़ी बांधे हुए, सफेद कपड़े पहने हुए, माँ दन्तेश्वरी देवी के छत्र (छत्तर) के सामने 'मुण्डा बाजा' बजाते घूमते हैं। कहा जाता है कि जब तक डिबडिबी 'मुण्डा बाजा' न बजे तब तक माँ दन्तेश्वरी की छत्र कहीं नहीं निकलता है। 'मुण्डा बाजा' बजाने वालो की संख्या करीब 12–15 तक होता है। बाजे के साथ–साथ गीत भी गाया जाता है तथा गीत के रचना भी वे स्वयं करते है । रियासत काल से 'मुण्डा बाजा' ''ग्राम–पोटानार'' मुण्डाजाति के लोग बजाते है जो चला आ रहा है।

5. **बलि की व्यवस्थाः–**

बस्तर जनजातीय क्षेत्र है। यहाँ अगर हम बलि प्रथा की बात कहें तो हमें घबराने या आश्चर्य चकित होने की बात नही हैं। बस्तरांचल में विभिन्न त्यौहारों के अवसरों पर देवगुड़ियों में पशु–पक्षियों की बलि देना, ग्रामीण अंचल में आज भी एक पवित्र कार्य माना जाता है। उनके धार्मिक विश्वासों की पुष्टि होती है इस प्रथा को निश्चित ही एक भौगोलिक क्षेत्रों में नही बाँधा जा सकता है क्योंकि भारत में विभिन्न जाति धर्म के लोग रहते हैं उनके अपनी अलग–अलग नियम–धर्म मौजूद हैं। निश्चित ही पूजा–विधान के बाद लोगों को मांसासहार मिल जाता है। पूर्व में तो बस्तरांचल में ''नर–बलि'' की भी प्रथा थी लेकिन अब नही है। समय के बदलने के साथ–साथ विधि–विधानों में भी जरूर बदलाव आया है। अब बस्तर दशहरा में करीब–करीब 100 बकरे की बलि दी जाती है। लेकिन बस्तर दशहरा समिति के अनुसार 86 बकरा ही बलि में चढ़ाते हैं। बकरे की बलि की व्यवस्था ''ग्राम–राजूर'' के मुरिया जनजाति के लोग करते हैं। इनके हाथों तक बकरे को पहुँचाने का कार्य ठेकेदारों का होता है। बस्तर दशहरे के पूजा–विधान में इसके अलावा ''मोंगरी मछली'' बलि का प्रमुख स्थान है। कहा जाता हैं। कि रियासत काल में निशा जात्रा मंदिर में जो गड्ढे मौजूद हैं। वहॉ भैंस के बलि देने के बावजूद वहाँ का गड्ढा रक्त से नही भरता था और उसी गड्ढे में केवल एक ''मोंगरी मछली'' के बलि देने पर गड्ढ़ा रक्त से लबालब भर जाता था। इसी तरह अण्डे व नारियल की बलि तो असंख्या होता है।

कार्मिक व दशहरा में भाग लेने वालों के लिए भोजन सुविधाः—

बस्तर दशहरा को जोशीला और सम्पन्न कराने वाले गाँव—गाँव से आए आम नागरिकों के लिए आजकल तहसील कार्यालय से पटवारीयों के द्वारा प्रत्येक दिन केवल प्रतिव्यक्ति दो किलो चावल और सब्जी से संबंधित कुछ सामग्री प्रदान की जाती हे। जैसे—तेल, हल्दी, मसाला, मिर्च, दाल आदि। सन् 1862 से पूर्व समय में बस्तर दशहरा पर्व को सुचारू रूप से चलाने के लिए खासकर राजस्व वसूली से जुड़े लोग अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया करते थे, विशेषरूप से कामदार, नेंगी,नाइक,चालकी इत्यादि। तत्पश्चात् बस्तर राज्य तहसीलों और परगानों में बँटा। एक—एक परगना में कई—कई गाँव आते थे और कुछ परगनो को मिलाकर एक तहसील होता है। प्रत्येक परगना का मुख्यिा परगनेया माँझी कहलाता था जो आज भी मौजूद है।

पूर्व रियासत काल में दशहरा पर्व मनाने के लिए तथा पूजा—विधान से संबंधित प्रत्येक सामग्री की व्यवस्था लोग अपने घरों से ही करते थे। अर्थात् अपनी हैसियत के अनुसार चॉवल, अरहर, मूँग, उड़द, नमक हल्दी और तेल आदि सामग्री एकत्र करते थे। बलि के लिए पशुओं की भी व्यवस्था करते थें, विशेषकर बकरे इस पूरी सामग्री का नाम ''दसराहा बोकड़ा 'माँगनी' चॉऊर'' पड़ गया था। रियासती शासन काल में राजकोठी, टेम्पल कमेटी और तहसील कार्यालय की मिली—जुली व्यवस्था पर बस्तर दशहरा निर्भर करता था। राजा के द्वारा तहसीलदार व परगनेया

माँझियों के द्वारा सामग्री जुटाने के लिए ''बिसाहा पैसा'' बँटवाता था। जिसे जमा की गई राशि की भुगतान पैसा माना जाता था। आश्चर्य वाली बात यह है कि कुछ लोगों के अनुसार ''बिसाह पैसा'' को राजा द्वारा पॉकेट खर्च के रूप में दिया जाता था। आज से पीछे 10–15 साल के बीच दशहरे में दूरांचल से आए लोगों के चेहरे में जो रौनक दिखाई पड़ती थी वह आज खोती चली जा रही है। पहले लोग बस्तर दशहरा मनाने के लिए अपने हिसाब से 'सल्फी', 'लाँदा', 'मंद' आदि मादक द्रव्य को साथ लाया करते थे। लेकिन वर्तमान समय में यह कम होता जा रहा है। ऐसा हिसाब लगाया जा सकता है। कि आधुनिकता के विकास का प्रभाव पड़ रहा है। अब जगदलपुर शहर में दूरांचल क्षेत्र से आए लोगों को रूकने के लिए शायद जगह की कमी महसूस हो रही होगी। जैसे पहले दूरांचल से आए लोगो की भीड़ अब देखने को कम मिलती है। दशहरा से संबंध रखने वाले व्यक्ति ही आते हैं, अन्य लोग नहीं आ पाते हैं। कुछ श्रम सेवको का कहना हैं कि चॉवल–दाल सही समय पर नही मिलता। कार्यालय खुलने का समय 10 बजे है और ऑफिसर अपने अनुसार भोजन सामग्री का वितरण करते है। जबकि श्रम सेवक सुबह से ही बिना कुछ खाए संबंधित कार्यो में लग जाते हैं तथा वे कामों को अधिक महत्व देते है। वाकई हम कह सकते हें कि यहाँ के लोग सरल स्वभव के मिलते है। यही वजी है कि पूर्व में भी और वर्तमान में भी लोग कठिनाईयों के बावजूद अपनी अभित्ववों का निर्वहन सहर्ष करते है।

निष्कर्ष:–

बस्तर का महापर्व ''बस्तर दशहरा'' कई मायनो में लोकप्रिय या बहुयामी है जो आज के आधुनिक युग में भी शहरी व ग्रामीण जनता को अपनी और आकर्षित करता चला आ रहा है। फिर भी कहा जाए तो अनुचित न होगा कि वास्तव में वर्तमान में संचालित बस्तर दशहरा तत्कालीन मूल दशहरे का एक औपचारिकता बस रह गया है। वर्तमान में ग्रामीण जन शहर में दशहरा के दौरान कई परेशानियाँ का सामना करते है। वे केवल एक जिम्मेदारी समझकर यहाँ तक आते है, क्योंकि रियासत काल से दशहरा के विभिन्न कार्य उनके बीच विभक्त कर दिया गया है। इसलिए मांई दन्तेश्वरी का असीम प्यार उन्हे खींच लाता है। यही कारण है कि प्रतिवर्ष वे अपना खर्च कर शहर तक पहुँचते है और परम्परा का निर्वाहन करते है। बस्तर दशहरा संपूर्ण बस्तर के जनों तथा रियासत को जोड़ने वाला महापर्व है। इस महापर्व को रियासत काल में राजा का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था किंतु वर्तमान में शासन प्रशासन के सहयोग के बावजूद दशहरा महापर्व में परिवर्तन हो रहा है तथा भावना के स्थान पर औपचारिकता तथा कर्त्तव्य निर्वहन की प्रवृत्ति हावी हो रही है।

डॉ.टी.राधाकृष्ण आई.ए.एस.
संचालक,
आदिमजाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
रायपुर (छ.ग.)